5-1



यति शतकम्

श्री सच्चिदानन्द सरस्वती जी।

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्व प्रकाशकः ।
तेनचित्त समाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥१॥
आसीदेकं परंब्रह्म नित्यमुक्तमविक्रियं ।
तत्स्वमाया समावेश द्वीजमव्याकृतात्मकम् ॥ २ ॥



यति शतकम् ।



भाषानुवाद सहितम् ।

जिसको

श्री सच्चिदानन्द सरस्वती जी
अवधूत योगीराज हृषीकेशवासी
ने
यतिजनों के लाभार्थ निर्म्माण किया
और

जिसको पं० छविनाथ मिश्र ने
बद्रीप्रसाद पांडे द्वारा अभ्युदय प्रेस—प्रयाग में
मुद्रित कराय प्रकाशित किया ।

प्रथमवार] [१०००



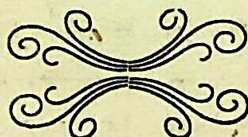
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

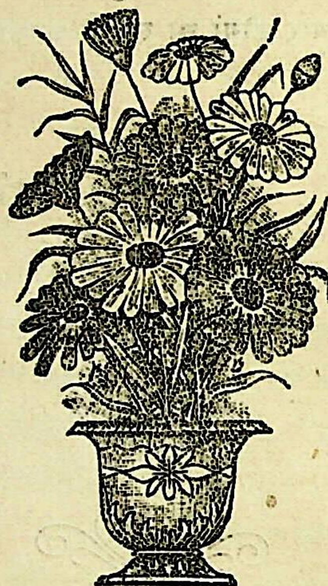
आज कल प्रायः देखने में आता है कि भारतवर्ष निवासी अनेक प्रकार की पीड़ाओं तथा क्लेशों से जर्जरित होकर संतापित व दुःखित हो रहे हैं। इसके मूल कारण अनेक लोगों के मत अनुसार अनेक व भिन्न हैं, किन्तु बहुत लोगों के विचार में वर्णाश्रम अनुकूल धर्मों के त्याग से यह कष्ट प्राप्त हुये हैं। और है भी, कि जब भिन्न वर्णों के अनुयायी अपने कर्तव्य कर्मों को त्यागकर स्ववर्ण व धर्म भिन्न कर्मों को करने लगते हैं तो समाज बंधन शिथिल पड़ जाते हैं, जिस कारण से अनेक कायिक व मानसिक दुःखों का प्रादुर्भाव होता है। पूर्व समय में द्विज विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्य धारण करके लौकिक व पारलौकिक विद्याध्ययन करते व अपने को गुरुतर आश्रम गृहस्थ के योग्य बनाकर आश्रम को अंगीकार करते थे, और लौकिक कल्याणकारी कर्मों को करते हुये अपने को ईश्वरप्राप्ति साधन के निमित्त वानप्रस्थ व सन्यास

आश्रम के योग्य बनाते थे। सब प्रकार की उन्नति का मूल कारण ब्रह्मचर्याश्रम है। प्राचीन काल में विद्वान व संन्यासी लोग विद्या व उपदेश द्वारा मनुष्यों को अपने कर्तव्यकर्म की ओर प्रवृत्त कराते थे। अनेक कारणों करके विद्या का प्रचार तो बहुत कम हो गया। सन्यास की भी जो बहुत ही मान्य व पवित्र आश्रम है परिपाटी बहुत ही बिगड़ गई और अब इस आश्रम में अनेक धूर्त सम्मिलित हो कर इसको बिगाड़ रहे हैं। बहुधा तो कितने संन्यासी अक्षर ज्ञान भी नहीं रखते और न विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम को पूर्ण कर इस आश्रम में घुसते हैं जिससे यह आश्रम (सन्यास) तो बहुत ही हीन दशा को पहुंच गया गया है, यहां तक कि केवल उदर पूर्णार्थ कितने तो गेरुवे वस्त्र धारण करके स्वामी जी कहाने लगते हैं। तुलसीदासजी ने बहुत ठीक कहा है 'नारिमुई घर सम्पति नासी, मूंड़ मुड़ाय भये सन्यासी' इस हीनावस्था को देख कर व उसके सुधार के निमित्त अनेक विचार करने पर श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती जी ने यह निश्चय किया कि यदि एक छोटा संग्रह ऐसा हो कि जिसमें यतियों के कर्तव्य कर्म्म का दिग्दर्शन हो तो उसको पाठ व श्रवण कर अनेक यति लाभ उठा सकेंगे। इस विचार से यतिशतक नामक एक छोटा संग्रह

संकलित किया। संग्रह संस्कृत भाषा में होने से बहुधा यतियों के जो संस्कृत से अनभिज्ञ हैं लाभदायक नहीं हो सकता था इस कारण बड़े परिश्रम से स्वामी जी ने भाषा में उलथा कराकर मुझे इसके प्रकाशित करने की आज्ञा की है। यदि इससे कुछ भी संन्यासियों का यत्किञ्चित सुधार होगा तो स्वामी जी का परिश्रम सुफल हो जायगा।

दासानुदास
छविनाथ मिश्र,
मुज़फ्फरनगर।







श्री गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ।

नत्वा गुरुं शिवं साम्बं तथैव स्वेष्टदेवतां ।
यतिधर्म्मं यथा योग्यं समाहृत्य ब्रवीम्यहम् ॥
कीदृशोहि यतिश्रेष्ठः कैर्गुणैः पूज्यते भुवि ।
तेषां धर्म्मं समासेन विविच्य दर्शयाम्यहम् ॥१॥

टी०—श्री गुरु महाराज को प्रणाम करके तदनन्तर पार्वती सहित शिव जी महाराज को तथा स्वेष्ट देवता को प्रणाम करके यतियों का धर्म्म यथा योग्य, यति किसको कहते हैं यति को क्या कर्तव्य है, किन गुणों के होने से यति पृथिवी में संपूर्ण वर्णाश्रमों करके पूजित होता है सो अनेक प्रमाणों द्वारा विवेचन करके दिखाते हैं। प्रथम सन्यस्ताश्रम के फल का दिग्दर्शन मात्र कहते हैं।

सन्यस्तंतु द्विजंदृष्ट्वा स्थानाच्चलतिभास्करः।
अयंमे मण्डलंभित्त्वा ब्रह्मत्वमधिगच्छति ॥२॥

मनुः

टी०—जिस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचर्य्यावस्था को पूर्ण कर गृहस्थाश्रम में प्राप्त होकर यथा विहित पञ्चयज्ञों तथा अन्य शास्त्रोक्त गृहस्थ धर्म्म का पालन

कर देवता ऋषि पितर इन ऋणत्रय से मुक्त होकर इन्द्रियार्थ से विरक्त होकर सन्यस्त की इच्छा करता हुआ प्रथम शरीर तथा इन्द्रियों के साधन करने के लिये वानप्रस्थाश्रम को कर यथा सम्पन्न होकर जिस समय संन्यस्त को ग्रहण करता है उस समय सूर्यनारायण भी स्थान से विचलित हो जाते हैं—कारण कि यह मेरे मण्डल को भेदन करके साक्षात् ब्रह्म (यानी मोक्ष) को प्राप्त हो जायगा।

त्रिंशत्परां स्त्रिंशदपरां स्त्रिंशच्चपरतः परान्।
सद्यः सन्यसनादेव नरकात्तारयेत् पितॄन्॥ ३॥
मनुः

टी०—सन्यास को यथा विहित ग्रहण करने मात्र से ३० तीस श्रेणी तक के पूर्व पितर और ३० तीस अग्रिम श्रेणी में होने वाले पुरुष और उनसे भी पूर्व होने वाले पितरों का शीघ्र ही नरक रूपी महा दुःख समूहों से निकाल कर स्वर्ग में प्राप्त करता है, यह महिमा सन्यास की जो यथार्थ शास्त्रविहित करा गया उसकी है, अविधि से करा हुआ सन्यास यथार्थ साधन के न होने से परिणाम में विपरीति ही फल का देने वाला होता है, अतः सन्यास का फल लिख कर सन्यासांधिकारियों का भी प्रकरण लिखा जायगा।

चतुर्वेदस्तु यो विप्रः सोमयाजी शतक्रतुः ।
तस्मादपि यतिः श्रेष्ठो मेरु सर्षपयोरिव ॥४॥

अङ्गिरा ।

टी०—जो ब्राह्मण चारों वेदों का अध्ययन किया हुआ वेद विहित सोमयज्ञ आदि अनेक यज्ञों का करने वाला गृहस्थाश्रम निवासी है ऐसे ब्राह्मण की अपेक्षा भी यति ही श्रेष्ठ माना जाता है जैसे सरसों की अपेक्षा मेरु वृहत्तर समझा जाता है. कारण यह है कि ऐसे ब्राह्मण को भी गृहस्थाश्रम के अन्त में सन्यस्त ही की आज्ञा है । अतः सन्यस्त धर्म्म ही सर्वोच्च पदवी है यदि यथावत् सन्यस्त धर्म्म से वर्तमान हो ।

सूर्य्यखद्योतयो र्यद्वत् मेरुसर्षपयोरिव ।
अन्तरं हि महद्दृष्टं तथाभिक्षु गृहस्थयोः ॥५॥

अङ्गिरा ।

टी०—जैसे सूर्य और खद्योत (पटवीजना) को महान अन्तर है जैसे सुमेरु पर्वत और सरसों के दाने को महदन्तर है वैसे ही गृहस्थ और सन्यासी को महदन्तर समझना चाहिये ।

ईश्वरस्य च द्वेरूपे चरंचाचरमेव च ।
चरं सन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिषु ॥६॥

जैमिनीये ।

टी०—परमात्मा इस जगत् में दो रूप से पूजित है चर व अचर सो चर रूप तो सन्यासी का है अचर रूप मूर्ति पाषाणादि निर्मित है अतः सन्यासी सब से अधिक पूजनीय है अब सन्यस्त के अधिकारी को लिखते हैं।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवापुनः।
विरक्तः सर्वकामेभ्यः पारित्याज्यं समाश्रयेत्॥

व्यासः।

टी०—ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करता हुआ पुरुष यदि ब्रह्मचर्याश्रम में ही सांसारिक विषय भोगों से विरक्त हो जावे व सन्यास को धा॰॰ करे अन्यथा गृहस्थाश्रम को विधि पूर्वक ग्रहण करे गृहस्थ को सेवन करते हुए जिस मनुष्य को महात्माओं के संसर्ग से यदि सांसारिक संपूर्ण विषय भोगों से विरक्ति हो जावे उस ही समय सन्यस्त को ग्रहण करे अथवा वानप्रस्थ आश्रम को सेवन कर वैराग्य होने पर सन्यास को धारण करे, अभिप्राय यह है कि मनुष्य को जिस आश्रम को सेवन करते वैराग्य हो जावे तभी वह सन्यास को धारण करै बिना वैराग्य के सन्यास धारण करना प्रायश्चित्त रूप है।

यस्मिन्कामाः प्रविशंति विषयेभ्यः समाहृताः।
विषयान्न पुनर्यान्ति सकैवल्याश्रमे वसेत्॥८॥

वृहस्पतिः।

टी०—जिस मनुष्य की कांक्षा संपूर्ण विषयों से निवृत्त हो कर शांत रूप हो कर स्थित हो और विषयों की तरफ न दौड़े वह मनुष्य कैवल्याश्रम में निवास करने का अधिकारी है अर्थात् जिसका अन्तःकरण कुछ शांत रूप हो जावे वही यति धर्म्म का अधिकारी समझा जाता है।

यस्मिन्क्षांतिः शमः शौचं सत्यंसंतोषमार्जवं ।
अकिञ्चन मऽदंभश्च स कैवल्याश्रमे वसेत्॥९॥

टी०—जिस मनुष्य को शीतोष्ण सुख दुःख सहन की सामर्थ्य हो और शान्ति, शौच, वाह्य शुद्धि और अन्तःकरण शुद्धि, सत्यभावण, संतोष किसी पदार्थ की भी इच्छा न करना, स्वभाव कोमल, अपने पास किसी भी वस्तु का संग्रह न करना, और निष्कपटता, यह लक्षण युक्त मनुष्य सन्यस्त धारण का अधिकारी है।

अतीतान्नस्मरे द्भोगांस्तथैवानागतानपि ।
प्राप्तांश्चनाभिनन्देद्यः स कैवल्याश्रमेवसेत्॥१०

टी०—जिन नाना प्रकार के भोगों का पूर्व सेवन करा उनका स्मरण तक भी न करै और जो अगाड़ी प्राप्त होने वाले भोग हैं उनके लिये कुछ वांछा भी न करै और जो वर्तमानकाल में प्राप्त हैं उनसे कुछ प्रसन्न न

हो जिस मनुष्य का मन ऐसा निर्विकल्प होगया वही कैवल्याश्रम का अधिकारी हो सकता है।

श्रद्धा ध्यानं तपः शौचं यस्य वित्तंचतुष्टयम्।
रमणंचाद्वितीयस्य स कैवल्याश्रमेवसेत् ॥११॥

टी०—जिस मनुष्य का धन ही ध्यानादि चतुष्टय है अर्थात् ध्यान करना यानी चित्त की एकाग्रता तप करना, श्रद्धा यानी ईश्वर सम्बन्धी आस्तिक्य भावना, वाह्याभ्यंतर शुद्धि, और केवल अद्वितीय परमात्मा के विचार में सर्वदा तत्पर हो वही कैवल्याश्रम का अधिकारी होता है।

अंतस्थानींद्रियाण्यन्तर्बहिस्थान्विषयान्बहिः।
शक्नोति यः सदाकर्तुं स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥१२॥

टी०—अंतस्थ (भीतर की) इंद्रियों को भीतर ही रोक लेवे, वाह्य विषय इन्द्रियों को बाहर ही जो रोकने की शक्ति रखता हो वही सन्यास का अधिकारी हो सकता है, अर्थात् जिसके अंतःकरण में संकल्प विकल्प का अभाव होने से स्वप्नादिकों में भी चित्त प्रकृति खराब न हो उसही का नाम अंतस्थ इन्द्रियों का रोध है जब अन्तस्थ इन्द्रियों ही का रोध हो गया तो

फिर वाह्य विषय का रोध होना तो क्या कठिन है वाह्य विषय रोधन यानी संपूर्ण पदार्थों को मिथ्या समझ कर वैराग्य वुद्धि से उनमें इच्छा रहित होना इस ही को वहिरिंद्रिय रोध कहते हैं इसका करना प्रत्येक के लिये आवश्यकीय है ।

परमात्मनि योरक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि ।
सर्वैषणा विनिर्मुक्तः स भैक्ष्यं भोक्तुमर्हति ॥१३॥

व्यासः ॥

टी०—जो केवल परमात्मा विचार में वेदान्तादि श्रवण मनन द्वारा निर्भर हो और माया निर्मित सब पदार्थों में विरक्त हो जिसके अंतःकरण में किसी पदार्थ के ग्रहण करने की इच्छा न हो वही भिक्षा के अन्न का अधिकारी हो सकता है ।

यदानकुरुते भावं सर्वभूतेषु पातकम् ।
कर्मणामनसावाचा तदाभवतिभैक्ष्यभुक् ॥१४॥

टी०—जिस समय किसी जीवमात्र का बुरा कर्म, वाणी व मन से न चाहै न संकल्प मात्र करै तभी भैक्ष्य-भुक हो सकता है अर्थात् सन्यासी (भिक्षा मांगने का) का अधिकारी हो सकता है ।

पूजितो वंदितश्चैव सुप्रसन्नो भवेद्यथा ।
तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदा भवति भैक्ष्यभुक् ॥१५॥
संवर्तः ।

टी०—जैसे पूजन करने से अथवा प्रणाम करने से अपने मन में अत्यन्त हर्ष मानता है यदि दूसरे करके ताड्यमान यानी दुःखित करा हुआ भी वैसे ही आनन्द रहै तभी भैक्ष्यभुक् समझा जाता है अर्थात् सुख दुःखादि में एकसां ही भाव मानने वाला हो वह सन्यास का अधिकारी है। इस ही वास्ते प्रथम ब्रह्मचर्य में साधन कर फिर गृहस्थाश्रम में इन्द्रियों को दमन करता हुआ तदनन्तर सुख दुःखादिकों को सहन करने को वानप्रस्थ में तपश्चर्या कर जब सर्व प्रकार से इन्द्रिय विषय मन आदि के रोकने में सयत्न हो जावे तब ही सन्यास धारण करने का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं। जैसे आजकल सन्यस्त की प्रथा बिलकुल नष्ट भ्रष्ट हो रही है यह सर्वथा ही शास्त्र वाह्य होने से यथावत् नहीं किये हुए सन्यस्त में जिस प्रकार स्थिति रहनी चाहिये वह बिना साधन करे प्रथम ही सन्यासी का भेष धारण करने से होना अत्यंत ही कठिन है। यदि सन्यस्त ग्रहण करने पर भी विषयों का सेवन करा जावे वह उभय भ्रष्ट अर्थात् इस लोक व परलोक में च्युत हो कर अनेक नारकीय

दुःखों का भागी होता है अब सन्यास के अधिकारी को लिख सन्यासाश्रम में क्या करना चाहिये यह लिखते हैं।

सन्यास की प्रथम अवस्था।

स्नानं मनोमलत्यागो दानंचाभयदक्षिणा।
ज्ञानं तत्वार्थ संबोधो ध्यानं निर्विषयंमनः॥१६॥

टी०—शरीर शुद्धि के अर्थ नित्य स्नान करना, मन की अशुद्ध वासना का परित्याग, पूर्व संग्रहीत संपूर्ण द्रव्यों का परित्याग करना यही दान है, ब्रह्मविद्या उपदेश करके अज्ञ मनुष्यों को भी सांसारिक भय से मुक्त करना यही अभय दक्षिणा है।

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्य्यं तपःपरं।
क्षमा दया च संतोषो ब्रतान्यस्य विशेषतः॥१७॥
व्यासः।

टी०—किसी जीव मात्र की हत्या न करना इसी ही का नाम हत्या नहीं प्रत्युत किसी का अपमान नहीं करना किसी प्रकार से भी किसी के चित्त को दुःखी न करना, सत्य बोलना, किसी किसी पदार्थ के भी चुराने की भावना न करना, सर्वथा वीर्य रक्षा में तत्पर रहना, तीर्थयात्रा आदि व्रत करना ही तप है,

हर एक प्रकार से चित्त को शांत रखना, हर एक जीव के ऊपर दया दृष्टि रखना, भोजन मात्र में ही संतुष्ट रहना, यह सन्यासी को विशेष कर के पालन करना चाहिये।

अहिंसा का फल।

यस्मादपि च भूतानां यतेर्नोत्पद्यते भयम्।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयंनास्ति कुतश्चन ॥१८॥

टी०—जब यति से ही जीव मात्र को भय नहीं होता तब कोई जीव भी यति को भय नहीं देता यह नियम है, जो किसी को भी दुःख देने की भावना नहीं करता उसको कोई भी जीव दुःख नहीं देता। पुनः देहादिकों में ममत्व करने से ही दुःख की सम्भावना होती है, जब देहाध्यास से विमुक्त है तो फिर दुःख कैसा, अतः यति को किसी अवस्था में भी भय नहीं है।

अमृतंचैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्।
मृषाहिसाध्यतेमृत्युः सत्येन साध्यतेऽमृतम्॥१९॥

टी०—मोक्ष तथा मृत्यु (यानी जन्म मरण) यह दोनों इस शरीर से ही सिद्ध हो सकते हैं। असत्य बोलने से मृत्यु और सत्य बोलने से मोक्ष सिद्ध होता है।

तप का फल ।

ज्ञानेन मुच्यते भिक्षुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् ।
नरकं विषयाऽसंगात् त्रयोमार्गास्तपस्विनाम् २०

टी०—ब्रह्मज्ञान से मोक्ष, तप करने से स्वर्ग, विषय संग करने से नरक यह तीन गति सन्यासी को होती हैं।

क्षमा दयादिकों का माहात्म्य ।

तपस्तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थ मिंद्रियनिग्रहः ।
सर्व भूत दया तीर्थं ध्यानंतीर्थमनुत्तमम् ॥२१॥
न तथा पुष्करे स्नात्वा गंगायां कुरु जांगले ।
मुच्यते पुरुषः पापाद्यथास्नात्वाक्षमादिषु॥२२॥

टी०—तप को भी तीर्थ कहते हैं, क्षमा भी तीर्थ ही है, इन्द्रियों का दमन करना भी तीर्थ है, संपूर्ण प्राणियों पर दया करना भी तीर्थ है, परमात्मा का ध्यान करना यह सर्वोपरि तीर्थ है। जैसे इन तपादि तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य संपूर्ण पाप समूह से छूट जाता है ऐसे पुष्कर, गंगा जी, कुरुक्षेत्र आदि स्नान करने से पाप रहित नहीं हो सकता कारण यह है गंगादि तीर्थ भी तभी फलदाई होते हैं यदि क्षमा दया इन्द्रियनिग्रह तप

सत्य इत्यादि युक्त होकर स्नान करा जावे अन्यथा 'अन्यदेश कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुद्धयति । तीर्थेतु यत्कृतं पापं वज्र लेप समंभवेत्' अन्य देशों में किया हुआ पाप तीर्थ स्नान से नष्ट हो जाता है तीर्थ के ऊपर किया हुआ पाप बज्र लेप की बराबर हो जाता है—।

यदुक्तंभारते ।

निगृहीतेंद्रियग्रामो यत्र यत्र वसेन्नरः ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥२३॥

टी०—सम्पूर्ण मन आदि इन्द्रियों को रोककर जिस २ स्थान में निवास करता है मनुष्य उसी स्थान में कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य और पुष्कर राज तीर्थ रहते हैं अतः इन्द्रियों का निग्रह ही परम तीर्थ है।

यदुक्तं ।

इदं तीर्थमिदं नेति येनरा भेद दर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थ गमनं तत्फलादि च ॥२४॥

टी०—यह तीर्थ है यह नहीं यावत् काल पर्य्यन्त यह भेद बुद्धि स्थिर है तावत् काल पर्यंत ही तीर्थ गमन और तत्फल की प्राप्ति होती है जब विचार से भेद बुद्धि नष्ट हो जाती है उस मनुष्य के लिये सर्वत्र ही तीर्थ है।

पुनरुक्तं ।

स्नानं मनोमलत्यागो दानं चाभयदक्षिणा ।
ज्ञानं तत्वार्थसम्बोधो ध्यानं निर्विषयंमनः॥२५॥

टी०—स्नान करना मात्र ही स्नान नहीं—प्रत्युत अंतः-करण की अशुभ वासना दूर करना ही मुख्य स्नान है। दान—केवल द्रव्य का देनाही दान नहीं प्रत्युतः ज्ञानो-पदेश पूर्वक सांसारिक जनम मरण के भय से छुटा देने का नाम ही पुण्य दान है। ज्ञान—सांसारिक द्रव्यों का जानना व व्यवहारादिकों में निपुण होने का नाम ही ज्ञान नहीं प्रत्युतः वेदांत सूत्रों का तत्वमसि इत्यादि महावाक्यों का अर्थज्ञान वास्तविकस्थायी भाव से अंतःकरण में रहना इसही का नाम ज्ञान है। ध्यान—मन का सम्पूर्ण विषय रहित होकर ईश्वर में आरूढ़ होना ही ध्यान है।

बहिर्भ्रमति यः कश्चित्त्यक्त्वादेहस्थमीश्वरं।
स्वगृहेपायसंत्यक्त्वा भिक्षामटतिदुर्मतिः॥२६॥

टी०—जो मनुष्य हृदस्थ क्षेत्रज्ञ परमात्मा को छोड़ कर बाहर ढूंढ़ने के लिये फिरता है वह अपने घर में विद्य-मान पायस आदि द्रव्यों को छोड़ कर केवल भिक्षान्न को

लिये मूर्ख घर २ बार २ मांगता फिरता है । अतः वह अच्छा ही समझा जाता है ।

ब्रह्मचर्य्य लक्षणम् ।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्व मैथुन संत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥२७॥

टी०—संपूर्ण काल में जागृत स्वप्नादि सम्पूर्ण अवस्था में इंद्रिय मन व वाणी से सर्वथा मैथुन (स्त्री संग आदि) का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है ।

नसंभाष्येत् स्त्रियंकांचित्पूर्वदृष्टांचनस्मरेत् ।
कथांचवर्ज्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि२८

यमः ।

टी०—संन्यासी को किसी स्त्री से संभाषण नहीं करना जो पूर्व दृष्ट भी स्त्री है उसका स्मरण भी न करे और स्त्री की कभी वार्तामात्र भी न करे—यही नहीं. प्रत्युतः स्त्री का लिखा हुआ चित्र (तस्वीर) भी न देखे ।

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनस्सेवेत मैथुनम् ।
षष्टी वर्षसहस्राणि विष्टायांजायतेक्रिमिः२९

अत्रिः ।

टी०-जो सन्यस्त धारण करके फिर स्त्री संग को सेवन करता है वह यति साठ हजार वर्ष विष्टा का क्रिमि होता है। अतः 'न स्पृशेत् दारवीमपि' काष्ट निर्मित पुतली का भी स्पर्श न करे—प्रत्यक्ष का तो कहना ही क्या है।

न पाणिपाद चपलो न नेत्र चपलो यतिः।
नच वाक् चपलश्चैव इति शिष्टस्य लक्षणम् ३०

पुराणे।

टी०-यति हाथ पैरों की चंचलता का त्याग करदे और नेत्र चपलता (नेत्रों का मटकाना) या जल्दी २ प्रत्येक तरफ़ देखना भी त्याग दे और वाणी की चपलता अर्थात् जल्द २ बनावट के साथ बोलना भी छोड़ दे यही श्रेष्ठ यति का लक्षण है—वाणी की चंचलता में असत्य बोलने की सम्भावना है। असत्य का बोलना यति के लिये नरकप्रद है।

नापृष्टः कस्यचित् ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोकआचरेत् ३१

टी०-बिना पूछे किसी से कुछ नहीं कहे और पूछने पर भी बेक़ायदा नीति विरुद्ध पूछा हुआ न बोले। उस बातों को जानता हुआ भी विद्वान् लोक में जड़ अज्ञान

की समान विचरै, अतः यति वाणी की चंचलता को सर्वथा परित्याग कर देवे ।

संन्यासी के लिये भिक्षान्न का ग्रहण ।

ब्राह्मणक्षत्रिय विशां मेध्यानां भैक्ष्यमाचरेत् ।
तत्राप्यऽसंभवे पूर्वादाददीनोत्तरोत्तरम् ॥३२॥

टी०--यति पवित्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घर का भिक्षान्न ग्रहण करे; यदि सूतकादि दोष दूषित हो तो न ग्रहण करे जब तक ब्राह्मण का मिले क्षत्रिय का न ले, ब्राह्मण के अन्न का अभाव होने से क्षत्रिय का ले; क्षत्रिय का न मिलने पर वैश्य के घर का भिक्षान्न ग्रहण करे। कारण यह है कि जेसा शुद्ध अन्न भक्षण किया जाता है वैसी ही शुद्ध भावना अंतःकरण में उत्पन्न होती है। मलीन अन्न के सेवन से मलीन ही भावना पैदा होती है।

श्रोत्रियान्नं न भिक्षेत श्रद्धाभक्तिवहिष्कृतम् ३३
द्वावेवा श्रमिणौभोज्यौ वानप्रस्थोगृहीतथा ।
अभोज्यमन्नमन्येषां इतरेषांतु लिंगिनाम् ३४

टी०--यति ब्रह्मचारी जब तक गुरू के पास रह कर वेदाध्ययन करे उसको श्रोत्रिय कहते हैं। उसके अन्न को न

ग्रहण करे और जो श्रद्धाभक्ति करके रहित दी हुई भिक्षा है उसको भी न ग्रहण करे। वानप्रस्थ और गृहस्थ इन दो ही आश्रम से भिक्षान्न ग्रहण करे; इन दोनों से भिन्न और सब चिन्हधारी आश्रमियों का अन्न यति को मने है।

न भिक्षायां भवेद्दोषो न च भिक्षाप्रतिग्रहः।
सोमपानसमाभिक्षा तस्मादहरहश्चरेत्॥३५॥

विष्णु।

टी०—भिक्षा के अन्न में दोष नहीं है न भिक्षान्न प्रतिग्रह होता है। किन्तु भिक्षान्न अमृत के समान होता है इस वास्ते इसको नित्य ग्रहण करे।

गंगायास्सलिलं पुण्यंशालिग्राम शिलातपः।
भिक्षान्नं पञ्चगव्यंच पवित्राणि युगेयुगे॥३६॥

टी०—जैसे श्री गंगा का जल पवित्र होता है, और शालिग्राम की मूर्त्ति और तप और भिक्षा का अन्न और पञ्चगव्य यह सब प्रत्येक युग में पवित्र हैं।

याचिताऽयाचिताभ्यांचभिक्षायांकल्पयेत्स्थितं
माधुकरं याचितं स्यात्प्राक प्राणीतमयाचितं३७

दत्तात्रेयः।

टी०—याचित जो मांग कर लाया जावे, अयाचित जो दैवयोग से बिना मांगे ही प्राप्त हो जावे ऐसे अन्न से

अपनी स्थिति रक्खे; जो मांगकर लाया जावे उसे मधुकरि भिक्षा कहते हैं जो विना मांगे ही प्राप्त हो जावे वह प्राक्प्रणीत है अर्थात् पूर्व संस्कार से प्राप्त हुई है।

आत्मसम्मितमाहार माहरेदात्मवानयतिः।
अत्यन्त क्षुधितस्यापि समाधिर्नैवजायते ३८
विष्णु।

टी०—विचारशील यति आत्मसम्मित (उदर पूर्ति मात्र) अन्न को ग्रहण करे, कुतः? अत्यन्त क्षुधा करके पीड़ित का मन समाधि में स्थित नहीं रह सक्ता।

एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्ष्य प्रसक्तोहि यतिर्विषयेष्वपि सज्जते ३९

टी०—एकही समय भिक्षा को ग्रहण करे अधिक भिक्षा में लवलीन न होवे क्योंकि भिक्षा में अत्यन्त आसक्त हुआ यति विषयों में भी आसक्त हो जाता है।

नचोत्पत्ति निमित्ताभ्यां नचक्षत्राङ्गविद्यया।
नानुशासनवादाभ्यांभिक्षांलिप्सेनकर्हिचित्४०

टी०—यति भूकम्पादि उत्पातों के फल, यद्वा अंगों के फरकने का फल, यद्वा ग्रहों का फल, यद्वा अंग विद्या हस्तरेखादिकों का फल, यद्वा अनुशासन शिक्षा देकर

यानी इस प्रकार की नीति है यह कह कर अथवा वाद अर्थात् शास्त्रार्थ कर कभी भी भिक्षा ग्रहण करने की इच्छा न करे।

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिंद्रियाणिनिवर्तयेत्॥४१॥

टी०—थोड़ा अन्न केवल प्राण धारणार्थक भोजन करे एकांत देश में निवास करता हुआ विषयों करके खैंची हुई भी इन्द्रियों के निग्रह करने में तत्पर रहे-अधिक भिक्षा ग्रहण करने तथा अत्यन्त दुग्धादि द्रव्य सेवन करने से वीर्य वृद्धि होने से कामातुर होकर स्त्रियों में आरक्त होने की संभावना हो जाती है।

भिक्षुर्द्विर्भोजनं कुर्य्यात् कदाचिज्जात दुर्वलः
स्वस्थावस्थोयदालौल्यात् तदाचांद्रायणंचरेत्

टी०—कदाचित् यति रोगादिकों करके अत्यन्त दुर्बल हो जावे और एक समय भोजन करके दुःख मानता हुआ दूसरे समय भोजन करे अन्यथा नहीं; यदि लोलुपता से दूसरी बार भोजन करे तब चांद्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है।

आहार ग्रहणे रात्रौ प्राणायामादशास्मृताः।
जलस्य ग्रहणेरात्रौ प्राणायामास्तथैव च ४३

टी०—यति आपत् में भी रात्रि को भोजन करने से १० दश प्राणायाम करने से पवित्र होता है तथा जल को भी रात्रि में पान करने से प्राणायाम करने से शुद्धि होती है।

अतैजसानि पात्राणि तस्यस्युनिर्व्रणानिच।
तेषामद्भिःस्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे॥४४॥

टी०—सन्यासी को भिक्षा के पात्र सौवर्णादि धातु वर्जित होने चाहिये-और फूटे हुए न हों—उन यति के भिक्षा पात्र की शुद्धि केवल जल के धोने ही से हो जाती है। जैसे यज्ञ में चमसादि यज्ञ पात्रों की जल से ही शुद्धि मानी है।

अलावुन्दारु पात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा।
एतानि यति पात्राणि मनुः स्वायंभुवाब्रवीत्४५

टी० यति के पात्र तुम्बी के या काष्ट के तथा मृत्तिका के बांस के या वृत के वक्कल के होने चाहिये यह मनु स्वायंभुव कहते हैं।

पक्वं वा यदि वा पक्वं पचेद्यदि क्वचिद्यतिः।
स्वधर्मस्य तु लोपेन तिर्यक् योनिं व्रजेत्सवै४६

यमः।

टी०—यति को अपने हाथ से सर्वथा भोजन बनाना मने है जो यति पक्वान्न या कच्ची रसोई अपने हाथ से बना कर खाता है वह अपने धर्म के नष्ट होने से तिर्यक् योनि में उत्पन्न होता है।

अन्न दानपरोभिक्षुश्चतुरोहन्ति दानतः।
दातारमन्नमात्मानं यस्मैचान्नं प्रयच्छति ४७

यमः।

टी०—जो यति अन्न दान के आश्रय से रहता है; ऐसे दान से चारों को मारता है, दाता को, अन्न को, स्वयम् और जिसको अन्न दान दिया जाता है।

हव्यंकव्यंचराजेन्द्र नाश्नीयादात्मावान्यतिः।
हव्यकव्य परोभिक्षुः पतत्येव न संशयः॥४८॥

टी०—यति श्राद्ध के अन्न तथा देवकर्म यज्ञादिकों के अन्न को न भक्षण करे; हव्य अन्न देवताओं का, कव्य अन्न पितरों का भक्षण करने वाला यति नरकों में वास करता है।

श्राद्धान्नं यस्य कुक्षौतु मुहूर्तमपिवर्तते।
भिक्षोश्चत्वारिनश्यन्तिआयुप्रज्ञायशोवलम्

टी०—जिस यति की कुक्षि में श्राद्ध का अन्न १ मुहूर्त (२ घड़ी) भी रह जाता है उस भिक्षु की आयु, बुद्धि, यश और बल नष्ट हो जाते हैं।

चरेन्माधुकरींवृत्तिं यतिर्म्लेक्ष कुलादपि।
एकान्नंतु न भुञ्जीत वृहस्पति समादपि॥५०॥

पाराशर।

टी०—यति मधुकरी वृत्ति को ही ग्रहण करे चाहे निन्दित कुल से भी क्यों न मिले परंच एक के अन्न को कभी सेवन न करे वृहस्पति के समान से भी; इसका यह अभिप्राय नहीं कि यति म्लेक्ष के घर का अन्न भक्षण कर, अर्थात् शुद्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य के अन्न न मिलने पर भी एक के स्थान पर भोजन न करे। पूर्व विधान कर आये हैं 'ब्राह्मण क्षत्रिय विशां मेध्यानां भैक्ष्य माचरेत्" यदि पवित्र द्विजाति के घर का अन्न न मिले तो अपवित्र से तो चाहे आपत में ग्रहण करे। परन्तु एकान्न न भक्षण करे।

उपानद्भ्यांविनाभिक्षुःकृत्वाभिक्षाटनादिकम्
मार्गेमूत्रसमाकीर्णेसम्यक्स्नानेनशुद्ध्यति ५१

यमः।

टी०—बिना जूतों के यति भिक्षा करने पर पुनःस्नान करने से शुद्ध होता है। क्योंकि मार्ग में मूत्रादिकों का

पैरों से स्पर्श होता है अतः स्नान करना चाहिये इससे यह भी सूचित होता है कि यति को जूता धारण करने से दोष नहीं यदि वस्त्र आदि का हो तो और अच्छा ।

सन्यासी के योग्य देश ।

हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये ख्याता पुण्यतमाभुवि ।
देशे सरस्वती तीरे नर्मदायास्तु पश्चिमे ५२

अत्रि ।

अदूषयन्सतां मार्गं ध्यानासक्तोमहींचरेत् ।
एक वासा अवासा वा एक दृष्टिरलेपकः५३
निरामयं निरावाधं प्रसन्नसलिलान्वितं ।
मेध्यान्नवहुलंचैव धनिनांकुल संकुलम् ॥५४॥
भक्तायत्र जनाःसर्वे स्ववृत्तिपरिपालकाः ।
श्रद्धधानामुदात्ताः युशांताः कल्याणवादिनः५५
प्रयच्छन्तियथान्यायं भिक्षांसर्वरसान्वितां ।
भिक्षवेपुष्कलं साधु यच्चान्यद्धर्म साधनम् ५६
अयाचिताः प्रयच्छन्ति तं देशं यत्नतोव्रजेत्।
तत्रैव रमते नित्यं यावदायुर्भवेद्ध्रुवम् ॥५७॥

टी०– हिमाचल विन्ध्याचल के मध्य की जो भूमि है वह पवित्र है; नर्मदा के पश्चिम भाग में और सरस्वती के तीर पर यति धर्म को आचरण करता हुआ श्रेष्ठ मनुष्यों के मार्गानुसार परमात्मा के ध्यान में आरूढ़ हुआ पृथ्वी में विचरै एक वस्त्र को धारण करके अथवा वस्त्र रहित और एक दृष्टि होकर अर्थात् नेत्र चापल्यता को त्याग कर, अलेपक अर्थात् किसी जगह प्रेम से लिप्त न होकर इस प्रकार निरामय देश में अर्थात् जिस देश में अत्यंत रोगादिक न हो वायुजल जहां दूषित न हों; निरबाधं अर्थात् किसी प्रकार बाधा पहुचाने वाले जीव जन्तु दुष्ट मनुष्य जिस जगह न हों, और जहां जल श्रेष्ठ, स्वच्छ और निर्मल हो; जिस देश में पवित्र अन्न अधिक पैदा होते हों; जो देश धनी मनुष्यों के कुल से पूरित, जिस देश में सब मनुष्य परमात्मा की भक्ति में तत्पर हों साधु महात्माओं की सेवा करने वाले हों, श्रद्धा युक्त प्रसन्न रहने वाले, शांत जिनके चित्त, प्रियवाणी के वक्ता हों, यथा योग्य भक्ति सहित, संपूर्ण रस संयुक्त भिक्षा के देने वाले साधु संन्यासियों का अन्न वस्त्र पानादि उपयोगी द्रव्यों से सत्कार करने वाले, बिना याचना ही देश कालोपयोगी द्रव्यों से सत्कार करने वाले हों ऐसे देशों में यत्न से निवास करे जब तक आयु पूर्ण हो ।

निन्दित देश ।

मुहूर्तमपिनासीत् देशे सोपद्रवे यतिः ।
उपद्रवेणमनसि समाधिर्नैवजायते ॥ ५८ ॥

टी०-जो देश पूर्वोक्त गुणों से रहित हो, अनेक उपद्रव युक्त हो उस देश में यति एक मूहूर्त्त मात्र भी न ठहरै ऐसे देशों में ठहरने से मन की समाधि और शांति नष्ट हो जाती है ।

यति के कर्तव्य !

दूषितोपि चरेत् धर्म्मं यत्र तत्राश्रमेरतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्म्मकारणम् ५९

मनुः ।

टी०-जिस आश्रम में निवास करता हो मनुष्य उस आश्रम से विरुद्ध मनुष्यों से दूषित करा हुआ भी अपने धर्म को न छोड़े, केवल दण्डादि लिङ्ग मात्र धारण करना ही धर्म्म का कारण नहीं होता किन्तु तत्तत आश्रम विहित धर्म्मानुष्ठान ही धर्म्म का कारण है; अतः संपूर्ण भूतों में ब्रह्म दृष्टि द्वारा सम दृष्टि होकर विचरै ।

फलं कतक वृक्षस्य यद्यथांबु प्रसादकं ।
ननाम गृहणादेव तस्यवारि प्रसीदति ॥६०॥

मनुः ।

टी०—जैसे निर्मली का फल जल को साफ करने वाला होने पर भी यदि केवल जल में उसका नाम मात्र ही लिया जावे तो वह जल को साफ नहीं कर सक्ता ; वैसेही संपूर्ण आश्रमों का भेष मात्र धारण करने से पार नहीं हो सक्ता किन्तु तत्तद्धर्म्मानुष्ठान करने से ही फल मिलता है ।

संरक्षणार्थं जंतूना रात्रावन्हो वा सदा ।
शरीरस्यात्पये चैव समीक्ष्य वसुधांचरेत् ॥६१॥

मनुः ।

टी०—शरीर के पीड़ित हो जाने पर भी पिपीलिकादि सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिये दिन व रात्रि को पृथिवी को देख कर गमन करे ।

अन्हारात्र्याच याञ्जन्तून् हिनस्यज्ञानतोयतिः ।
तेषांस्नात्वाविशुद्ध्यर्थंप्राणायामान्षडाचरेत्

टी०—यति जो अज्ञान से भी रात्रि दिन के भ्रमण में जीव हत्या करै उनके नष्ट होने के लिये स्नान कर ६ (छः) प्राणायाम करे ।

प्राणायामाब्राह्मणस्य त्रयोऽपिविधिवद्दीक्षताः
व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥६३॥

टी०—व्याहृति प्रणव (ॐ) युक्त तीन३ भी विधिवत प्राणायाम करना ही ब्राह्मण का परम तप है अर्थात् पूरक कुम्भक रेचक तीन प्राणायाम तो अवश्य ही कर्तव्य है।

दंह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनांहि यथामलाः
तथेंद्रियाणांदह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात्६४।

टी०—जैसे सुवर्णादि धातु अग्नि से धमाई हुई मल रहित हो जाती हैं वैसे ही प्राणायाम करने से संपूर्ण इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिर्चकिल्विषं।
प्रत्याहारेणसंसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्६५

टी०—प्राणायाम करके रागादि दोषों को दूर करै धारणा (ब्रह्म में मन को लगाना) करके पाप दूर करै, इन्द्रियों से निग्रह करना प्रत्याहार कहलाता है, प्रत्याहार कर के संपर्क जन्म दोष को दूर करें; ध्यान (सोहमस्मि) करके क्रोध लोभ मोह यह अनिश्वर गुणों को नष्ट करे।

यस्तु द्वादशसाहस्त्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत्।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परंब्रह्म प्रकाशते ॥६६॥

टी०—जो मनुष्य (१२०००) सहस्त्र नित्य प्राणायाम द्वारा ओंकार का अभ्यास करता है उसको १२ बारह महीने में परब्रह्म का अनुभव हो जाता है; यदि प्राणायाम के बिना भी किया जावे तो भी फलदाई हो।

अधियज्ञं ब्रह्मजपा आधिदैविकमेव च।
अध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितंच यत् ६७

टी०—पूर्व ब्रह्म ध्यान स्वरूप उपासना कही अब तदंग होने से यति को वेद का जप करना लिखते हैं; अधियज्ञं यज्ञ को अधिकार करके प्रवृत्त जो वेद हैं उसका पाठ करे; अधिदैदेविकं वताओं को अधिकार करके प्रवृत्त जो वेद उसको जपै ; आध्यात्मिक जीव का अधिकार प्रवृत्त जो वेद उसको जपै; वेदांताभिहितं जो वेदांत में कहा है सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति इत्यादि ब्रह्म प्रतिपादक सर्वथा जपै।

इदं शरणमज्ञानां इदमेव विजानतां।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छतां ॥६८

टी०—यह वेद रूपी ब्रह्म इसके अर्थ को न जानने वाले जो मनुष्य हैं उनकी भी गति करने वाला है, पाठ मात्र से ही पाप नाश करता है; जो इसके अर्थ को

यथावत जानने वाले हैं स्वर्ग और मोक्ष की इच्छा करने वाले हैं उनको भी यथावत् फल देने वाला है।

अनेन क्रम योगेन परिव्रजति योनरः।
सत्यजेत्सर्व पापं परंब्रह्माधिगच्छति ॥६९॥

टी०—इस क्रम से (आश्रमादाश्रमं संगच्छेदिति) जो द्विज मात्र संन्यास को धारण करता है वह इस ही लोक में संपूर्ण पापों को छोड़ कर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

एष धर्म्मोऽनुशिष्टोवैयतिनां नियतात्मनां७०

टी०—यह धर्म्म यतियों का जो चार प्रकार के हैं (कुटीचक १ बहूदक २ हंस ३ परमहंस ४) उनका साधारण ही वर्णन किया है अब विशेष वर्णन करते हैं।

शिखा सूत्र परित्यागी वेदान्तश्रवणं विना।
विद्यमानेपि संन्यासे पतत्येव न संशयः ७१

टी०—वेदांत श्रवण के बिना जो मनुष्य संन्यास लेकर शिखासूत्र का परित्याग करता है वृथा कर्म परित्याग के लिये नरकों में वास करता है।

अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थ बोधोयावत् दृढंभवेत्
शमादिसहितस्तावत् अभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ७२

टी०- अहं ब्रह्म इत्यादि वाक्यों के अर्थ का बोध जब तक दृढ़ न होवे और शमदमादि जब तक प्राप्त न होवे तब तक वेदान्तादि श्रवण का ही अभ्यास करै अन्यथा कर्म त्याग से अनर्थ होता है ।

न कर्म्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च सन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ७३

टी०-कर्मों का परित्याग मात्र से पुरुष नैष्कर्म्य अर्थात ज्ञान को नहीं प्राप्त हो सक्ता और न केवल कर्म्मों के छोड़ने से ही मनुष्य सिद्धि को पा सक्ता है ।

नियतं कुरु कर्म्मत्वं कर्म्मज्यायोह्यकर्म्मणः ।
शरीर यात्रापि च तेन प्रसिध्येदकर्म्मणः ७४

टी०-भगवान, अर्जुन को कहते हैं हे अर्जुन तुम नित्य ही कर्म करो न करने से कर्म का करना ही श्रेष्ठ है बिना कर्म किये अंतःकरण की शुद्धि नहीं होती अंतः-करण शुद्धि के बिना ज्ञान भी नहीं हो सक्ता अतः पूर्ण ज्ञान होने पर भी यथावत कर्म्म का त्याग नहीं हो सक्ता; कुतः कर्म्म का सर्वथा परित्याग होने से शरीर की यात्रा निर्वाह भी नहीं सिद्ध होती ।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म्म समाचर ।
असक्तोह्याचरत्कर्म्म परमाप्नोति पूरुषः ७५

टी०-इस वास्ते असक्त अर्थात् कर्म्मों की अभिलाषा छोड़ कर आवश्यक कर्म्म को करो; असक्त होकर कर्म्म करता हुआ पुरुष परमपद को प्राप्त होता है जनकादि राजर्षियों ने भी कर्म्म ही से सिद्धि पाई है; संन्यास का धारण ज्ञान होने पर ही योग्य है, अन्यथा नहीं ।

संन्यासंचैव यत्कृत्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिः कार्यास्वधर्मात्प्रच्युतस्यच७६

टी०-जो मनुष्य संन्यास को धारण कर फिर उसका परित्याग करता है व यथावत् संन्यस्त धर्म्म न होने से वह अपने धर्म्म से च्युत होकर अनेक नरकों को भोगता हुआ उनसे कभी भी नहीं छूटता ।

मौनानीहा अन्तयामं दंड वाक्देह चेतसाम्
यद्येते न भवेद्दंडो वेणुभिर्नभवेद्यतिः ॥ ७७ ॥

टी०-वाणी का दंड मौन स्वल्प २ भाषणादि; देहदंड अधिक चेष्टा न करना; मनका दंड प्राणायाम द्वारा वायु का रोध, यदि यह तीनों दंड धारण नहीं किये तो

केवल बांस का दंड धारण करने ही से यति नहीं हो सक्ता।

काष्ठ दण्डो धृतोयेन सर्वाशीज्ञानवर्जितः।
सयातिर्नरकान् घोरान्महारौरव संज्ञकान्७८

टी०—जो केवल काष्ट दंड को धारण कर सर्वभक्षी ज्ञान वर्जित हो वह महा रौरव संज्ञक महा नरकों में जाता है।

यदा तु विद्यात् यत्तत्वं परब्रह्म सनातनं।
तदैक दंड ग्रहणमुपवीतं शिखां त्यजेत्॥७९॥

टी०—जिस समय उपासना द्वारा सनातन परब्रम्ह के तत्व का ज्ञान हो जावे उस समय एक दंड मात्र ग्रहण कर यज्ञोपवीत व शिखा का परित्याग करे।

कौपीनं युगलं वासां कंथा शीतनिवारणम्।
पादुकेचापिगृहणीयात् कुर्यान्नान्यस्यसंग्रहः८०

टी०—यति कुपीन तथा धोती अलफी और शीत निवारणार्थक गुदड़ी लोई आदि और खड़ांऊं इनका ग्रहण करे और किसी वस्तु का संग्रह न करे।

न तीर्थसेवी नित्यं स्यात् नोपवास परोयतिः।
नचाध्ययनशीलस्यात्नव्याख्यानपरोभवेत् ८१
न शिष्याननु वध्नीयात् ग्रंथान्नैवाभ्यसेद्वहून।
लोकवादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकंचन ८२
नासच्छास्त्रेषु सृज्जेत नोपजीवेत जीविकां।
वाद वादांस्त्यजेत्तर्कान् पक्षं कंचन संश्रयेत् ८३
न व्याख्यामपयुंजीत पक्षं कंचन संश्रयेत्।
न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः॥८४॥
शांतस्य समचित्तस्यविभृयानत्तुवात्यजेत् ८५
नाभिनंदेध्रुवंमृत्युमध्रुवंवास्यजोविनम्।
कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवंध्रुवम्॥८६॥

टी०—यति नित्य तीर्थ के ऊपर निवास न करै और उपवास अर्थात अन्न का परित्याग भी न करे और शिष्यों को भी संग न रक्खे। और बहुत से ग्रंथों का भी अभ्यास न करे; अनेक ग्रंथों का भिन्न मत होने से चित्त विक्षिप्त हो जाता है; श्रुति और वेदांतातिरिक्त और विद्या का अध्ययन न करे और व्याख्यान देने में भी कटिवद्ध न हो; मनुष्यों करके करी

हुई निन्दा स्तुति को सहन करे और सब को ब्रह्मरूप मानता हुआ किसी का भी अपमान न करे; और असत् शास्त्र (अर्थात् तमोगुणी शास्त्र न्याय आदि हेतु बाद गर्भित) में अधिक राग न करै और न कोई आजीवन के लिये ज्योतिष वैद्यक दुकान आदि का व्यसन करै और वादविवाद को भी न करै और हर एक विषय में तर्क भी न करे केवल एक पक्ष को आश्रय कर उसही पर अपना दृढ़ विश्वास रक्खै; ।

यति महात्मा का धर्म हेतुक कोई आश्रम नहीं है कैसे यति का कि जो शांति सम्भव और समचित्त हो चित्त के शांत होने पर आश्रम को रक्खे या त्याग देवे; यति न अपने मृत्यु की इच्छा करे और न अपने जीवन ही की इच्छा रक्खे, न मृत्यु से भयभीत होवै; केवल प्राणियों का सृष्टि संहार का कारण जो काल है उसकी ही प्रतिक्षा करे वही भूतों की उत्पत्ति संहार का मुख्य कारण है यह विचार कर ।

न सुखं देवराजस्य न सुखंचक्रवर्तिनः ।
यादृशं वोत रागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ॥८७॥

टी०—जो सुख एकान्त निवास करने वाला सर्व संग परित्यागी वीतराग अर्थात् रागद्वेष से रहित होने से

मुनि को होता है वह सुख न देवराज इंद्र को है न चक्रवर्ती राजा को है वह अनेक चिन्ताओं में मग्न रहते हैं और यह सर्वथा ही चिन्ताओं से रहित हो जाता है चिन्ता के समान दूसरा दुख ही नहीं संसार में ।

चिताचिन्ता समाख्याता चिन्ताचैवगरीयसी।
चितादहति काष्ठेनचिन्ताकाष्ठाग्निभिर्विना८८

टी०—चिता और चिन्ता दोनों बराबर हैं प्रत्युत चिन्ता चिता से बढ़कर है चिता काष्ट अग्नि के संयोग से ही दग्ध करती है और चिन्ता काष्ट अग्नि के बिना ही दग्ध कर देती है।

विचार ।

बंधमोक्षविभागज्ञो बुद्ध्याचेन्मोक्षणेच्छया।
उपायान्वेषणे युक्तः कोन मुच्येत् बंधनात्८९

टी०—शास्त्र के विचार पूर्वक बंधमोक्ष के विभाग को जानने वाला मनुष्य यदि बुद्धि से मोक्ष पद की इच्छा करना चाहै तो मोक्ष के विचार में रत हो तो कौन बंधन से न छूट जाय।

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया ।
तथाचेद्विश्व कर्तारं कोन मुच्येत बन्धनात्९०

टी०—जैसे मनुष्य धन की इच्छा करता हुआ रात्रि दिवस सेवा स्तुति करता है यदि ऐसी ही स्तुति उस जगत कर्ता परमात्मा की उसही प्रेम से करे तो कौन जन्म मरण की फांसी से न छूट जाय।

यथाहि निपुणः सम्यक् परदोषेक्षणं प्रति ।
तथा चेन्निपुणः स्वेषु कोन मुच्येत बन्धनात्९१

टी०—जैसे मनुष्य दूसरों के दोष देखने में निपुण होता है यदि वैसे ही अपने दोष देखने में निपुण हो तो संसार से कौन नहीं छूट सक्ता किन्तु सब ही छूट सकते हैं।

अर्थार्थे यानिकर्माणि करोति कृपणोजनः ।
तान्येव यदि मोक्षार्थं कोन मुच्येत बन्धनात्९२

टी०—जैसे मनुष्य धन की इच्छा करता हुआ अनेक प्रकार के यत्नों को करता है अनेक तंत्र मंत्र आदिक कर्मों में तत्पर होता है यदि वही यत्न मोक्ष के लिये करै तो संसार से छूट जाना क्या बड़ी बात है।

यावत् प्रलयते हृष्टो देशराजादिकं बहु ।
तावर्धंत् प्रलयेच्छास्त्रं कोन मुच्येत् बन्धनात ९३

टी०—जैसे मनुष्य साहूकार राजा आदि के प्रसन्न करने को अत्यन्त वाणी का व्यय करता है यदि उतना ही काल वेदान्त या देवताओं के स्तोत्र या वेद पाठ में व्यय करे तो ऐसा कौन है जो संसार से पार न होजावे।

आत्मना येन यत्नेन लोकस्य कुरुते प्रियं।
आत्मनो यदि तेनैव कोनमुच्येत बन्धनात्९४

टी०—जैसे मनुष्य किसी वस्तु की इच्छा करता हुआ तन मन धन से लोकों को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है यदि वैसी ही चेष्टा अपने आत्मा के लिये की जावे तो कौन परम पद को न प्राप्त हो जावे।

सुतां रूपवती दृष्ट्वा यथा चित्तं न काम्यते।
तथा चेत्परदारेषु कोन मुच्येत बन्धनात ९५

टी०—जैसे मनुष्य का अपनी सुन्दर स्वरूपा कन्या को देखकर चित्त नहीं चलायमान होता वैसे ही पराई स्त्री को देखकर भी चित्त चलायमान न हो तो कौन संसार रूपी समुद्र से न पार हो जावे।

स्तूयमाने यथा नित्यं सुप्रसन्नो भवेन्नरः।
यद्येवं निंद्यमानेपि कोन मुच्येत बन्धनात् ९६

टी०—जैसे परों (औरों) करके स्तुति करने पर मनुष्य अत्यन्त प्रसन्न होता है यदि वैसा ही निन्दा करने पर भी प्रसन्न हो तो कौन संसार से न छूट जाय।

निराशः सर्वभूतेषु निराशीर्निष्परिग्रहः।
सर्वज्ञः सर्वतो मुक्तो मुच्यते नात्र संशयः ९७

टी०—जो संपूर्ण प्राणी मात्र से किसी भी वस्तु की कांक्षा न करने वाला न किसी से अशीर्वाद स्तुति आदि की इच्छा करने वाला स्त्री पुत्रादिकों के संग से रहित संपूर्ण वस्तु को जानने वाला सब तरफ से निर्लिप्त हो वह मनुष्य संसार, से मुक्त हो जाता है।

तापत्रयेणाभिभूतं यदेतदखिलं जगत्।
तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोतिकः ९८

टी०—जब स्वतः ही यह संपूर्ण जगत् तापत्रय (अध्यात्म, अधिभूत अधिदैव) करके दुःख को प्राप्त हो रहा है तो फिर कौन विद्वान ऐसे दुःखित मनुष्यों की गैल द्वेष को करे।

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूत भवं तथा।
सर्वत्र समचित्तस्य मे दुःखं जायते कुतः ९९

टी०—शारीरक दुःख ज्वरादि व्याधि शरीर में होने वाली मानस दुःख उन्माद चित्त विक्षेप आदि दैव सम्बन्धी शीतोष्ण वर्षादि कृत; भूतिभव प्राणियों से प्राप्त होने वाला दुःख; सुख दुःखों में समबुद्धि रखने वाला जो मैं हूं मेरे दुःखों की संभावना कहां हो सक्ती है।

एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पंडितैर्ज्ञात्वा सर्वभूत समंहरिम् १००

टी०—इस प्रकार संपूर्ण प्राणियों में समबुद्धि रूप भक्ति स्थिर रहने वाली विद्वान को यत्न से करनी चाहिये क्योंकि सर्व भूतों में निवास करने वाला हरी ही है।

आत्मज्ञानेन मुक्तिःस्यात् तच्चयोगादृतेनहि।
सच योगश्चिरंकालमभ्यासादेवसिद्ध्यति १०१

टी०—केवल आत्म ज्ञान ही से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है, परन्तु वह आत्मज्ञान बिना योग के नहीं हो सक्ता, और योग बहुत काल अभ्यास करने से सिद्ध होता है। इस वास्ते संपूर्ण मनुष्यों को योग का करना अवश्य समझा जाता है; चित्त की वृत्ति को सब तरफ से रोक कर परमात्मा के ध्यान में लगावे

इस ही का नाम योग है इसके लिये प्राणायाम करा जाता है प्राणों के रुकने से चित्तस्थिर निश्चल हो जाता है प्राणों के चंचल होने से चित्त चंचल हो जाता है।

भगवत भक्तों के लक्षण।

श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः
नहृष्यति नचस्तौति स विज्ञेयो जितेंद्रियः १०२

टी०—जो मनुष्य सुन्दर शब्द को श्रवण कर और अच्छी वस्तु को स्पर्श करके और सुन्दर वस्तु को देखकर तथा अनेक सरस पदार्थ खाने पर; अनेक सुगंधित वस्तुओं को सूंघने पर भी न मन से प्रसन्न हो न उनकी स्तुति करै और इन से विपरीत वस्तुओं की निन्दा भी न करै वह जितेंद्रिय समझा जाता है।

न काम्यकर्म वीजानां यस्य चेतसि संभवः।
वासुदेवैक निलयः सवै भागवतो नरः १०३

टी०—जिसके अन्तःकरण में सकाम कर्म करने की संभावना भी न होवै केवल अनवरत रात्रि दिवस वासु-देव नारायण ही में लवलीन होवै वह भगवत भक्तों में

उत्तम समझा जाता है भक्तों के लक्षण ग्रंथों में विस्तार से लिखे हैं ग्रंथ विस्तार भय से केवल दिग्दर्शन मात्र ही किया है।

शिक्षा।

अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कंठ गतै रपि।
कर्तव्यमेव कर्तव्यं एषः धर्म्मः सनातनः १०४

टी०—जो कर्म करने योग्य नहीं है धर्म से सर्वथा विरुद्ध है वह चाहै प्राणकंठ गत भी हो जावै वह सर्वथा अकर्तव्य ही है जो कर्म करने योग्य है वही करना चाहिए यह सनातन से धर्म चला आता है।

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुते न च।
किं विविक्तेनमौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् १०५

टी०—जिस मनुष्य का चित्त स्त्रियों के वस में है उसकी विद्या और तप तीर्थ दान कथा श्रवण और एकांत निवास और मौन धारण यह सब वृथा है इनके करने से कुछ भी फल नहीं प्राप्त हो सकता।

नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञो धर्म्ममेकं तु चिन्तयेत्।
अहारस्तु मनुष्यांणां जन्मना सह जायते १०६

टी०—विद्वान मनुष्य भोजन के लिये कुछ भी चिंता न करै, केवल धर्म ही को मन में चिंतवन करता रहै

क्योंकि आहार तो मनुष्यों के जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है जन्म से पूर्व ही उस विश्वंभर ने माता के स्तनों में दूध पैदा कर पालना किया तो फिर आहार की क्या चिन्ता है।

अवश्यं भाविनोप्यर्थाः स्वधर्म्म फल हेतवः।
तान्नसन्तोनुशोचन्ति शास्त्रतत्त्वार्थवेदिनः१०७

टी०—अवश्य होने वाला कर्म भी अपने धर्म जन्य फल का ही कारण है सन्त लोग उन सुख दुःख को भोगते हुए भी कुछ सोच नहीं करते क्योंकि वे शास्त्र का जो तत्व अर्थ है उसको जानते हैं क्योंकि अवश्य किये हुए कर्मों का परिणाम रूप सुख दुःख सर्वथा ही अनिवार्य होता है।

दान मिज्या तपः शौचं तीर्थं वेदाः श्रुतं तथा।
अशांत मनसः पुंसः सर्वमेतद् पार्थकम् १०८

टी०—जिस मनुष्य का मन शांत नहीं हुआ उसका करा हुआ दान यज्ञ तप शौच गंगादि तीर्थ संपूर्ण वेद और श्रुत पुराण वेदान्त आदि सब ही निष्फल हो जाते हैं।

ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
सर्व एव शमेनैव प्राप्नुवन्ति परांगतिं १०९

टी०—चाहै ब्रह्मचारी हो वा गृहस्थी, वानप्रस्थ हो वा संन्यासी वह जब तक मन का वेग शांत न होवै तब ही तक संसार के बंधन में है मन के शांत होने पर परमपद को प्राप्त हो जाता है।

सुमहांत्यपि शास्त्राणि धारयन्तो वहून्यपि।
छेतारः संशयानांच लोभग्रस्ता पतंत्यधः ११०

टी०—जो मनुष्य अनेक शास्त्रों को पढ़ कर और अनेक वेद वेदान्तादि शास्त्रों को मनन करता हुआ भी यदि लोभ के ही वस में फंसा हुआ है तो वह मनुष्य कुम्भी पाक आदि अनेक नरकों को प्राप्त हो अनेक दुःख भोगता है।

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्म्मो ज्ञानार्थमेव च।
ज्ञानंचध्यानयोगार्थं सोऽचिरान् मुच्यतेनरः १११

टी०—केवल मनुष्य का जीवन धर्म ही के लिये होता है और धर्म का फल स्त्री पुत्रादि नहीं प्रत्युत केवल ज्ञान होता है और ज्ञान केवल परमात्मा के ध्यान ही के लिये होता है जो ऐसा करता है वह शीघ्र ही संसार रूपी समुद्र से पार हो जाता है अतः जो मनुष्य धर्म करके रहित है वह केवल पशु के समान होते हैं।

आत्मा नदी संयम तोयपूर्णा
सत्याऽवहा ध्यान तटादयोर्म-
स्तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र
न वारिणा शुध्यति चांतरात्मा ११२

टी०—यह मनुष्य की जो आत्मा है यही नदी है संयम रूपी इसके बीच में जल परिपूर्ण हो रहा है सत्यरूपी इसका प्रवाह है ध्यान रूपी इसमें तट है ईश्वर के गुणों का मनन करना यह इसमें तरंग है; हे अर्जुन ऐसी नदी में स्नान कर जिससे अन्तरात्मा शुद्ध हो जाता है केवल जलमें स्नान करने से देह शुद्ध हो जाती है परन्तु अंतरात्मा शुद्ध नहीं होता।

पुनः बामनपुराणे।

ध्यान हृदे ज्ञान जले राग द्वेष मलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे सयाति परमांगतिं ११३

टी०—ध्यान रूपी तालाव में ज्ञानरूपी जिसमें जल भरा हुआ है और रागद्वेष रूपी कीचड़ करके रहित है ऐसे मानसिक तीर्थ में जो स्नान करते हैं वही परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

जीवनमुक्त परमहंसों के लक्षण।

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे समप्रभः।
यथाप्राप्तं स्थितिर्यस्य सजीवन्मुक्तउच्यते११४

टी०-जिस मनुष्य का मन सुख प्राप्त होने पर अधिक प्रफुल्लित न हो और दुःख प्राप्त होने पर खिन्न न हो दोनों अवस्थाओं में एक सा हो वह जीवन्मुक्त कहाता है।

यो जाग्रति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्नविद्यते।
यस्य निर्वासनोबोधः स जीवन्मुक्त उच्यते११५

टी०-जो सुषुप्ति में स्थित हुआ भी जागता है और जाग्रत में भी स्थित हुआ सुषुप्ति में स्थित है—और जिसके जागृति अवस्था नहीं अर्थात् जो संसार को भ्रममान कर फिर बुद्धि में जिसका सत्य भास कभी भी न हो उस ही का नाम जागृत का न होना है; यदि उसको बोध भी है पर हर प्रकार की शुभाशुभ वासना से रहित है वह जीवन्मुक्त समझा जाता है।

निस्तरंगाम्भोधिसमः स्थिरधीसर्वदात्मवान्।
समः सर्वेषु भूतेषु परमहंसः स उच्यते ११६

टी०—जिसका मन निस्तरंग (संकल्प विकल्प से रहित) जैसे समुद्र स्वच्छ निर्मल गम्भीर होता है ऐसा ही जिसका अंतःकरण स्वच्छ निर्मल गम्भीर हो निश्चल जिसकी बुद्धि हो अर्थात् अनेक मतवादियों करके विशेष भ्रम डालने पर भी जिसकी बुद्धि स्थिर ही रहै संपूर्ण काल आत्मविचार में ही रत हो वह परमहंस होता है।

ब्रह्मज्ञानी के लक्षण।

येन केन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः।
यत्रक्वचिच्छायीस्यात्तम् देवाब्राह्मणंविदुः११७

भारते।

टी०—जिस किसी पूर्वकर्म्म के भोग से गात्र ढका हुआ जिसका अर्थात् किसी ने वस्त्र उठा दिया तो ओढ़ लिया अन्यथा नग्न रहने वाला ऐसे ही जिस किसी ने भोजन करा दिया तो कर लिया अन्यथा भूखे ही पड़ा रहना भोजन मांगने के लिए कुछ यत्न न करना जहां कहीं देखा उस ही जगह सो जाना यह अवस्था जिसकी हो वही ब्रह्मज्ञानी होता है यह भी परमहंस ही हैं।

कंथा कौपीन वासस्तु दण्ड धृग्ध्यान तत्परः।
एकाकी रमते नित्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

टी०—जो यति केवल उपरला वस्त्र और कुपीन धारी हो और दंड धारण करने वाला सर्वथा ब्रह्मध्यान में तत्पर हो और अकेला विचरने वाला हो वही ब्रह्मज्ञानी समझा जाता है।

निराशिषमनारंभ निर्नमस्कार मस्तुतिम्।
अक्षीणं क्षीण कर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

टी०—जो यति किसी प्रकार के कल्याण की कांक्षा न करता हो और न किसी वस्तु का प्रयत्न पूर्वक आरंभ करता हो न किसी को शिर नवाता हो न किसी की स्तुति करने में प्रवृत्त हो अतः शरीर में भी दुर्बल न हो जो मनुष्य चिन्ता करते हैं वही सूख जाते हैं जिनको किसी प्रकार की चिंता नहीं वह न्यून भोजन मिलने पर भी हृष्ट पुष्ट ही रहते हैं अतः कृश न हो परन्तु क्षीण कर्मा हो अर्थात् सब कर्मों को ब्रह्मज्ञान में नाश कर दिया हो वही ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है।

जन्मना यस्तु निर्विण्णो मरणे न तथैव च।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तंदेवा ब्राह्मणं विदुः॥

टी०—जो बारंबार जन्म तथा मरण से भयभीत होकर तथा मानसिक दुःख और शारीरक व्याधियों के भय से संसार से विरक्त होकर ब्रह्मज्ञान में रत हो उसही को ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

अहिरिवगणाद्भीतः सन्मानान्नरकादिव ।
कुणपादिव परस्त्रीभ्यस्तंदेवा ब्राह्मणंविदुः१२१

टी०—जो मनुष्य समूह से ऐसे डरता हो कि जैसे मनुष्य सर्प से डरते हैं जो सन्मान बड़ाई से भी नरक के समान डरता हो जो स्त्री को देख कर ऐसा डरता हो जैसे मृतक पुरुष से डरते हैं उसको ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा ।
शून्यं यस्य जनाकीर्णं तंदेवा ब्राह्मणंविदुः १२२

टी०—जो मनुष्य इस शून्य आकाश को एक ब्रह्म करके सर्वदा देशकालावच्छिन्न परिपूर्ण देखता हो और यह अनेक चराचर जीव समूहों करके परिपूर्ण इस संसार को शून्य प्राय मानता हो वही ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है।

न जातिःकारणं तात गुणाः कल्याण कारणं ।
वृत्तिस्थापिचचाण्डालःतंदेवाब्राह्मणंविदुः१२६

टी०–हे तात ब्रह्मज्ञान में जाति ही मुख्य कारण नहीं हो सक्ती किन्तु उत्तम ब्रह्मोपासनादि गुण ही कल्याणकारक होते हैं, अतः केवल उत्तम जाति ही के अभिमान से मोक्ष दुर्लभ होता है; अतः शुभ कर्म्म ब्रह्मोपासनादि कर्म्म ही ब्रह्मज्ञान का मुख्य कारण है; अतः जो चांडाल भी पूर्व कर्म्मों के बल से संसार से विरक्त होकर ब्रह्म के ध्यान में दत्तचित्त होवे तो वह भी ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है; बहुत से अज्ञ मनुष्य इस जगह ब्राह्मण शब्द मात्र से विपरीत अर्थ कर यह कहते हैं कि ब्राह्मण जाति नहीं प्रत्युत कर्म से ही ब्राह्मण होता है यह उनकी सर्वथा भूल है; यह प्रकरण भारत का है उस जगह ब्राह्मण विषयक प्रश्न है जिसके उत्तर में यह श्लोक लिखे हैं इस जगह ब्राह्मण शब्द का अर्थ ब्रह्मज्ञान ही करा है यदि यह आपका ही मत स्वीकार किया जावे तो न 'जातिकारणं तातः' इससे स्फुट ही प्रतीत होता है कि जाति ब्रह्मज्ञान में कारण नहीं हो सक्ती इसको विद्वान आप विचार लेवें।

यति की प्रशंसा।

ब्रह्मिष्ठः परमोहंसः साक्षात् नारायणः स्मृतः।
यस्तं संपूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः॥१२४

टी०—जो परमहंस ब्रह्मज्ञाननिष्ठ हो वह साक्षात नारायण रूप है जो उसको नित्य श्रद्धाभक्ति से पूजन करता है वह साक्षात् विष्णु का पूजन करता है।

ईश्वरस्य च द्वे रूपे चरंचाचरमेव च।
चरं सन्यासिनां रूपं अचरं प्रतिमादिषु॥ १२५

टी०—परमात्मा के संसार में दो रूप हैं एक चर एक अचर; चर रूप सन्यासी का है, अचर रूप पाषाणादि मूर्ति है।

अष्टाक्षरेण मंत्रेण नमो नारायणात्मना।
नमस्यो भक्ति भावेन विष्णुरूपी मतोयति १२६

टी०—केवल सन्यस्त को धारण कर अष्टाक्षर मंत्र (ओंनमो नारायणाय) के जप करने से यति प्रणाम करने योग्य होता है जिससे यति विष्णुरूप माना है।

यतिर्यस्य गृहे भुंक्ते तत्र भुंक्ते स्वयं हरिः।
हरिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुक्ते जगत्रयम् १२७

टी०—यति जिसके घर में भोजन करता है वहां साक्षात् हरि भोजन करते हैं जिसके घर में हरि ने भोजन किया तहां त्रिलोक भोजन करता है यह घर संपूर्ण तीर्थों से भी पवित्र हो जाता है।

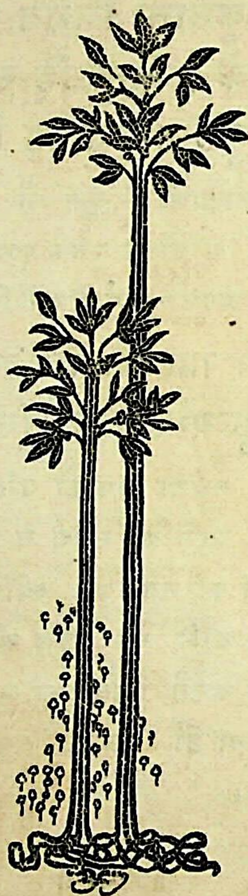
शतं कुलानां पुरतोऽग्रजातं
तथा कुलानां त्रिशतं समग्रं।
वसंतिलोके कृतिनां हि सर्वे
येषां कुले सन्यसतीह विप्रः ॥१२८॥

टी०—जिन ब्राह्मणों के कुल में कोई ज्ञान निष्ठ सन्यास को धारण करता है उनके १०० पीढ़ी पूर्व और ३ सौ (३००) पीढ़ी अगली स्वर्गलोक में निवास करती है।

संगः सर्वात्मना त्याज्यः यदि त्यक्तुं न शक्यते
सतां संगं सदाकुर्य्यात् सन्तः संसारभेषजम् १२९

टी०—मनुष्य सर्वथा संग को परित्याग करै यदि सर्वथा परित्याग करने को समर्थ न हो तो श्रेष्ठ, साधु महात्मा ज्ञानियों का संग करै क्योंकि संत ही संसार रूपी रोग के दूर करने को परम औषध रूप हैं इस वास्ते मनुष्यों को असत् पुरुषों का कुसंग त्याग कर श्रेष्ठ सन्तों का संग करना ही भवरूपी समुद्र से पार उतरने को नौका रूप है।

॥ इति ॥

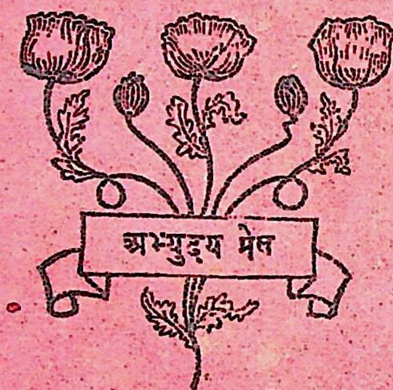


शुद्धिपत्र यतिशतक ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	६	परित्याज्यं	पारिव्राज्यं
"	९	सन्यस	संन्यास
११	२	भिक्ष	भिक्षु
२०	१	दशा	दश
२१	८	अन्य	अन्न
"	१०	आत्मावान	आत्मवान
२२	१७	भक्षण कर	भक्षण करे
२३	१२	मुदाक्ताःयु	मुदायुक्ताः
२६	८	मिलता	मिलता है
"	९	जन्तूना	जन्तूनां
"	१७	होने के लिये	होने के कारण
२७	२	प्रणये	प्रणवै
"	६	ध्यायमानानां	ध्मायमानानां
"	११	धारणाभिच	धारणाभिश्च
२८	१०	अधिदेविकंवताओं	अधिदैविकंदेवताओं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	४	यातिर्नरकान	यातिनरकान
३३	७	व्याख्यामपयुञ्जीत	व्याख्यानुपयुंजीत
३६	१९	तावधेत	तावद्वेत
३९	३	भूतिभव	भूतभव
४०	१४	तो नरः	तोत्तमः
४१	१७	अह्वारस्तु	आहारस्तु
४२	१७	श्रुत	श्रुति
४४	२	लटादयोर्म	लटादयोर्मि
”	१३	ह्रदे	ह्रदे
४७	१८	तयेव	तथैव
४८	६	कृणपादिव	कुणपादिव
”	१९	वृत्तिस्यापिच	वृत्तिस्यमपि
५०	१०	यति	यतिः




अभ्युदय प्रेस